शोध मंथन Vol. XVI No.3 July.- Sept. 2025 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X, Impact Factor 8.877 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.55

द्विवेदी–युगीन कविता में संवेदना एवं सरोकार

प्राप्तिः 02.08.2025
स्वीकृतः 10.09.2025

55

डॉ0 सुमन सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
राजकीय महिला महाविद्यालय, खरखौदा, मेरठ
ईमेलः *sumansinghverma1978@gmail.com*

सारांश

खड़ीबोली कविता के प्रथम चरण का स्वर्णोदय द्विवेदी–युग में प्रारम्भ हुआ। न केवल भाषा के स्वरूप परिवर्तन, गठन, संस्कार और व्याकरण–सम्मत रूप की दृष्टि से, बल्कि विषय की नवीनताओं के समावेश की दृष्टि से भी यह युग बहुत महत्वपूर्ण है। इस युग में परम्परावादी और स्वच्छन्दतावादी दोनों ही प्रकार की काव्य–शैलियों का विकास हुआ। आचार्य द्विवेदी के शासन में रहकर आदर्शवादी, नैतिकतापूर्ण एवं संस्कृत साहित्य के संस्कारों से प्रभावित काव्य लिखे जाने लगे। इस दिशा में इतिवृत्तात्मक कविताएँ संस्कृत वृत्तों में लिखी गयीं, जिनमें आत्माभिव्यंजन के स्थान पर वर्णनात्मकता की प्रधानता थी।[1]

वास्तव में द्विवेदी काल तक आते–आते 'लोक चेतना' धीरे–धीरे रचनात्मकता की दिशा में बढ़ती, लोकजीवन के आंतरिक व गतिशील तत्वों की पहचान करने ही लगी थी कि यह अतीत की ओर मुड़कर उद्‌बोधनपरक हो गई जिससे भक्तिकाल की परिवार प्रियता में कैद हो गयी। इससे प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता भी काव्य का विषय न बन सकी। इस समय में लिखा जाने वाला प्रियप्रवास (1914) और साकेत (1932) इसके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिनमें सभी कुछ परिवार के भीतर घटित होता है। हाँ, यह जरूर है कि पुराण–आख्यानों की भक्तिकालीन परलोकप्रियता से कविता लोकबद्धता की ओर मुड़ी और परिवार के भीतर उपेक्षित पात्रों को महत्व दिया जाने लगा। श्रीधर पाठक के 'गुनवंत हेमन्त' की धारा भी, जिसमें उन्होंने गाँव में उपजने वाले मूली, मटर को सामने लाने की कोशिश की, अवरूद्ध हो गयी। इसी को छायावाद ने आगे किया।[2]

द्विवेदी जी से बहुत अधिक प्रभावित होकर भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृति के प्रति बहुत से कवियों का आकर्षण बना रहा। कवियों ने समय–समय पर प्रगीतों की रचनाएँ की। इसी समय 'गीतांजलि' की धूम मची थी। बंगला और अंग्रेजी की काव्य शैलियों का प्रभाव हिन्दी पर पड़ने लगा था। खड़ीबोली के गीतिकाव्य के क्षेत्र में भी नये प्रयोग प्रारम्भ हुए। प्रो० बदरीनाथ भट्‌ट ने सन् 1912 ई० के प्रारम्भ में ही कई गीत लिखे। मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी अनेक कवियों ने प्रगीतियों की रचना की।[3]

मुख्य बिन्दु

द्विवेदी–युग, स्वच्छन्दतावाद, लोकचेतना, गीतिकाव्य, ऋतुवर्णन, लय और टेक।

अधिकांश आलोचक द्विवेदी काल की रचनाओं को इविवृत्तात्मक, रूखी, नीरस और कवित्वहीन कहा करते हैं। बात यह है कि स्वच्छन्दता के प्रयास में कविगण अनेक प्रकार के अस्थायी, सामाजिक और उपदेशात्मक विषयों पर भी कविताएँ किया करते थे। कवि कभी–कभी ऐसे विषय भी चुनते थे जिन पर वक्तृतापूर्ण विवेचना कर सकें। इन विशिष्ट कविताओं में मधुरता, व्यंजकता और सांकेतिकता का अभाव सा है। इनमें काव्योपयुक्तता के स्थान पर बौद्धिक अंश ही प्रधान है।[4]

द्विवेदी युगीन गीतियों पर लोकगीतों का प्रभाव भी कम नहीं है। लोकगीतों से ही इन्हें लय की प्राप्ति हुयी है, वहीं से आख्यान मिलें हैं और उन्ही की मधुरता तथा लोकप्रियता से आकर्षित होकर कवि गीतों की रचना में संलग्न हुए है। उनमे कवित्व कला का समावेश कर कवियों ने कलागीतों की सृष्टि की है। लोकगीतों से सहित्यिक गीतों के अभ्युदय की मान्यता यूरोपीय साहित्य में भी प्रचलित है। स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कुछ अच्छे गीत लिखे। गीत गोविन्द से प्रभावित 'भारतवर्ष' और आल्हे के आधार पर उन्होंने 'सरगो नरक ठेकाना नाहिं' गीत लिखे। उर्दू छन्दों पर आधारित 'टेसू की टांग' और 'महिला परिषद' के गीत लिखे। 'मेरे प्यारे हिन्दुस्तान' गीत की पर्याप्त प्रसिद्धि हुयी। ये सारे गीत द्विवेदी काव्यमाला में संगृहीत हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

हे देश सप्रण विदेशन वस्तु छोड़ो, संबंध सर्व उनमें तुम शीघ्र तोड़ो।
मोड़ो तुरंत उनसे मुहँ आज से ही, कल्याण जान अपना इस बात में ही।[5]

सियाराम शरण गुप्त की ''भीतर लक्ष्मी'' शीर्षक कविता में रवीन्द्र की ''भुवन मनमोहिनी'' भारत–जननी का प्रतिबिम्ब है। श्री रामनरेश त्रिपाठी की ''मातृभूमि'' कविता एक स्तवन के रूप में लिखी गयी है। बदरी नाथ भट्ट के 'प्रार्थना' शीर्षक गीत में भक्तिभावना के साथ राष्ट्रीयता का पुट है। इनकी 'सोने वाली जाग–जाग' तथा 'अब तो आँखे खोलो' रचनाएँ राष्ट्रीय उद्‌बोधन् की दृष्टि से अच्छे गीत हैं।

द्विवेदी युग में आधुनिक गीतिकाव्य के विकास के क्रम में प्राचीन ढंग के गीतों की भी रचना की गयी है। सत्यनारायण कविरत्न, बदरीनाथ भट्ट, श्रीधर पाठक इत्यादि कवियों ने स्तोत्र, कजली, ठुमरी, दादरा, होली और गजल इत्यादि भी लिखे है। डॉ० कृष्ण लाल ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है– ''काव्य–रूप की दृष्टि से आधुनिक गीत–काव्य का प्रारम्भ संभवतः गाँवों में प्रचलित लोकगीतों से होता है। संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी प्रान्तों में ''लावनी'' का बहुत प्रचार है और साधारणतः लावनी बाजों के दो अखाड़ों में बढ़ाबढ़ी चला करती है। इसी प्रकार कव्वाली, कजली, बिरहा, इत्यादि अन्य लोकगीत देश के भिन्न–भिन्न भागों में प्रचलित हैं। आधुनिक गीत–काव्य के रूप पर इन लोकगीतों का प्रभाव बहुत पड़ा है, विशेषकर लावनी का। लावनी में पाँच पंक्तियों के पश्चात् एक चरण की पुनरावृत्ति हुआ करती है।[6] उदाहरणार्थ–

''वह सभा–चतुर जो बिगड़े काम सुधारै,
जब तलक बनै तब तलक न हिम्मत हारै। (टेक)
जो राजा औ रैयत को दुख होवै,

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.55

वह मंत्र विचारै दीनों को सुख होवै,
मंत्री वह है जिसमें वह पौरूष होवैं
सब अंग पलै जब मुख्या मुख ज्यों होवै
सिद्धान्त में साधै, विवेक मंत्र विचारै,
जब तलक बनै, तब तलक न हिम्मत हारै''।

लावनी की भाँति कजली, दादरा इत्यादि अन्य लोकगीतों में भी एक पंक्ति की पुनरावृत्ति होती है। 'शंकर' ने अपने 'पंच पुकार' में इसी पुनरावृत्ति का प्रयोग किया है–

''किसी से कभी न हारूँगा। (टेक)
उर्दू की बेनुक्त इबारत लिख दूँ काबिल–दीद,
'बानी खुद बरीद' को पढ़कै 'बेटी देय जदीद',
चुँनीदा नज गुजारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।''[7]

माधव शुक्ल की कजली और दादरा की बानगी प्रस्तुत है–

कजली– **''काली छाय रही अँधियारी, घर में आन घुसे हैं चोर।**
बरसै मेह, दामिनी दमकै, चढ़ी घटा घनघोर।
बरसात हाय, हमारी सम्पत्ति नासत सबै बटोर।''

दादरा– **भोलेपन से तुम्हारा गुजारा नहीं।** इत्यादि[8]

श्रीधर पाठक ने नीच जाति की स्त्रियों के लिए भी राष्ट्रीय–गीत लिखे। उदाहरणार्थ मजदूरिनों के लिए लिखा गया प्रस्तुत गीत–

''भारत पै सैंया मैं बलि–बलि जाऊँ।
बलि बलि जाऊँ, हियरा लगाऊँ, हटवा बनाऊँ, घरवा सजाऊँ।
मेरे जियरवा का, तन का, जिगरवा का, मन का मन्दिरवा का प्यारा बसैया।
मैं बलि–बलि जाऊँ, भारत पै सैंया मैं बलि–बलि जाऊँ।[9]

गुरूभक्त सिंह की 'नाविक वधू' में एक सरल हृदया स्त्री की यर्थाथ अनुभूति की मनोहर व्यंजना 'गंगा की मनौती' के सिलसिले में अभिव्यंजित है, जब अधिक रात बीत जाने पर भी उसका पति नदी से वापस नहीं लौटा है–

''फँसे कहाँ दलदल में जाकर, कौन भवँर में है नैया?
वर सुहाग और माँग हमारी, रखना हे गंगा मैया।''[10]

श्रीधर पाठक ने कजलियाँ लिखकर अपनी लोकनिष्ठा का परिचय दिया है। उनकी कुछ कजलियाँ द्रष्टव्य हैं–

महलन फूलि रही फूल–बगियाँ, भौंरा रस ले बै किन जाय।
फूली जूही, चटकि रहे चम्पा, कमल रहे कलियाय,
विटपनु लिपटि चमेली खिलि रही, अलबेली छवि छाय। महलन फूलि रही[11]

लय और टेक लोकगीतों की आत्मा है द्विवेदीयुगीन कवियों ने इन पद्धतियों का भरपूर प्रयोग अपने गीतों में किया है। गिरधर शर्मा की लोरी के कुछ बन्ध इस प्रकार हैं–

सोजा बेबी सोजा, सोजा चन्दा सोजा,
सोजा भइया सोजा, सोजा चन्दा सोजा।[12]

यह रचना इस बात का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करती है कि छायावाद युग की गीति कविता पहले लोकगीतों के आश्रय में धीरे–धीरे विकसित हो रही थी। उन दिनों कितने ही ऐसे गीत लिखे जा रहे थे, जिनमें लोकगीतों की टेक पद्धति की भाँति पंक्ति बराबर आती थी। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

जब होता था हास धर्म का तब तुम आते थे कन्हैया,
आओ अपने प्रण को पालो कब तक हम दुःख सहे कन्हैया।[13]

द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कवि श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने भी ग्रामगीतों की लय में अनेक कविताओं का प्रणयन किया है। जन्मोत्सव हमारे लोक–जीवन का एक हर्षोल्लसित अवसर होता है। कृष्ण जन्म के अवसर पर भी वन्दनवार से, गीतवाद्य से तथा दानादिक कार्यों से बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' में इसकी अत्यन्त सुन्दर व्यंजना की है–

''मधुर मंजुल मंगल गान की
मच गई ब्रज में बहु धूम थी
सरस औ अति ही मधुसिक्त थी
नवल कामिनी की कलकंठता।''[14]

पुत्र जन्म के अवसर पर बधाई देने का रिवाज भी लोक–जीवन में पाया जाता है। विशेषकर सेवक वर्ग तो गा–बजा कर अपने हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति करते हैं। 'वैदेही वनवास' में लव–कुश के जन्मोपलक्ष पर वन–कुमारियाँ बधाई देने उपस्थित हुई हैं–

''बधाई देने आयी हूँ।
गोद आपकी भरी बिलोके, फूली नहीं समाई हूँ।
लालों का मुख चूम बलाएँ लेने को ललचाई हूँ।
ललक भरे लोचन से देखे बहु पुलकित हो पाई हूँ।''[15]

इसी प्रकार नामकरण संस्कार भी लोक में हर्षोल्लास व मांगलिक पूजादिक विधियों से सम्पन्न कराने का विधान है। इष्ट–मित्रों को आमन्त्रित कर गीतवाद्य व खानपान के साथ धूम–धाम से नामकरण किया जाता है। 'वैदेही वनवास' में हरिऔध ने लव–कुश के नामकरण संस्कार को बड़े ही धूमधाम से सम्पन्न होते प्रदर्शित किया है–

ब्रम्हचारियों का दल उसमें बैठकर,
मधुर कंठ से वेद ध्वनि है कर रहा।
तपस्विनी सब दिव्यगान गा रहीं,
जन–जन मानस में विनोद है भर रहा।[16]

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.55

इस युग में ऋतुपरक काव्यों की भी पर्याप्त रचना हुयी। जिनमें लोकगीतों की झलक मिलती है। बीसवीं सदी में कवियों के प्रकृति वर्णन की दो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं– प्रकृति के परम्परागत रूपों का वर्णन और प्रकृति निरीक्षण से उत्पन्न आनन्द के श्रोत का वर्णन। पहली प्रवृत्ति में ऋतुओं का वर्णन होता था, जैसे प्रभात–वर्णन, सन्ध्या–वर्णन एवं समुद्रतट–वर्णन आदि। इस प्रवृत्ति का प्रयोग पुराकाल से है। डॉ० कृष्णकाल ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है–

"शट्ऋतु–वर्णन और बारहमासा की प्रणाली का हिन्दी में भी बहुत प्रचार था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में जब खड़ी बोली भाषा का कोई आदर्श न था और भाषा इतनी अशक्त और असमृद्ध थी कि उसमें विविध विषयों पर कविता लिखना सरल काम न था, उस समय कवि प्रायः इस प्रकार के प्रकृति–वर्णन के पद्य लिखा करते थे। कालिदास के 'ऋतुसंहार' के आधार पर ऋतु–वर्णन की एक नयी प्रणाली चल निकली थी। मैथिलीशरण गुप्त, गिरिधर शर्मा, लोचनप्रसाद पाण्डेय, सत्यनारायण कविरत्न इत्यादि अनेक कवि इस प्रकार ऋतु–वर्णन अथवा प्रभात वर्णन इत्यादि लिखा करते थे।"[17]

ऋतुपरक काव्य के अन्तर्गत शड्ऋतु वर्णन एक ऐसा रूप है जिसमें वर्ष के सभी महीनों की परिवर्तित स्थितियों में विरहिणी नायिकाएँ अपने भावों की अभिव्यक्ति करती रहती हैं। कभी–कभी ऋतुपरिवर्तन को कवियों ने प्रकृति–सौन्दर्य की दृष्टि से भी देखकर उनका भिन्न–भिन्न चित्रण किया है। 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला के विरह–वर्णन प्रसंग में शड्ऋतु का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है।

ग्रीष्म की ताप से उर्मिला को बचाने के लिए अनेक उपाय किए गये– उशीर की आड़, भूमि–गर्भ–निवास, ताल–वृत्त, स्नान आदि किन्तु विरहिणी उर्मिला पर इन सबका विपरीत प्रभाव पड़ा। सखी उर्मिला को भूमिगर्भ के शयनागार में ले जाना चाहती है, पर वह भयभीत होती है और कहती है–

"ठेल मुझे न अकेली अन्ध अवनि गर्भ गेह में
आज कहाँ है उसमें हिमांशु–मुख की अपूर्व उजियाली।"[18]

वर्षा के आगमन पर उर्मिला सहानुभूति प्रकट करते हुए उसका स्वागत करती हुयी कहती है–

"बरस घटा बरसूँ मैं संग सरसें अवनी के सब अंग
मिले मुझे भी कभी उमंग सबके साथ सयानी।"[19]

शरद को देखकर उसे लक्ष्मण के नेत्रों की याद आती है–

"निरख सखी ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।"[20]

शिशिर के आने पर वह कहती है–

"शिशिर, न फिर गिरि वन में।
जितना माँगे पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में,
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तनसे।"[21]

बसन्त तो मादकता का प्रतीक होता ही है, यह ऋतु विरहिणी की वेदना को अत्यधिक उद्दीप्त करती है। बसन्त का एक दृष्य द्रष्टव्य है–

''काली काली कोइल बोली–
होली–होली–होली
हँसकर लाल–लाल ओठों पर हरियाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली–पीली चोली।''[22]

होली का गीत गाते हुए अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने बसन्त के स्वरूप का अत्यन्त रंगीन चित्र प्रस्तुत किया है–

''किस लाली से तू है लाल।
कौन मल गया मुख पर तेरे गोरी ललित गुलाल।
क्यों गुलाब सा आज हो गया, गोरा–गोरा गाल।''[23]

बसन्त के आगमन से उर्मिला का मानसिक उद्वेग बढ़ जाता है। वह अपने मचलते हुए यौवन को समझाती हुए कहती है–

''मेरे चपल यौवन काल
अचल अंचल में पड़ा सो, मचल कर मत साल।''[24]

साथ ही कामदेव से भी प्रार्थना करती है–

मुझे फूल मत मारो,
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो।''[25]

प्रिय से मिलने की तीव्र उत्कंठा लोकजीवन में पायी जाती है। यह विरह की अत्यन्त उत्कट स्थिति होती है। उर्मिला की इस स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण गुप्त जी ने किया है–

''यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम–धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में।
बीच–बीच में उन्हें देख लूँ, मैं झुरमुट की ओट,
जब वे निकल जाँय तब लेटूँ उसी धूल में लोट।''[26]

ऋतुवर्णन के अतिरिक्त प्रकृति के अन्य रमणीय चित्रों का भी सुन्दर वर्णन द्विवेदी युगीन कवियों ने किया है। श्री रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' ने 'वर्षा का आगमन' शीर्षक कविता में प्रकृति का सुन्दर रूप चित्रित किया है। श्रीधर पाठक के गीतों में भी देश की प्राकृतिक सुषमा एवं उद्‌बोधन मिलते है–

''प्रकृतियाँ एकान्त बैठी निजरूप सवाँरति,
पल पल पलटति भेष छनिक छवि छिन धारति।[27]

प्रकृति के मानवत्व के सम्बन्ध में प्रो. सुधीर के विचार ध्यातव्य है–

''भावना प्रवण कवियों के द्वारा प्रकृति का मानवतत्व सुन्दर रूप में प्रस्तुत हुआ है। प्रकृति के मानवीकरण का सटीक उदाहरण है– रामचरित उपाध्याय का 'पवन दूत' और प्रिय प्रवास की 'पवन दूती'। उपाध्याय जी ने एक प्रेमी द्वारा पवन को दूत बनाकर प्रियतमा के पास भेजा है, मेघदूत की

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.55

भाँति हरिऔध की विरहिणी राधा पवन को दूती के रूप में अपनी सारी व्यथा–कथा देकर भेजती है। कल्पना और भावुकता के संगम से प्रकृति का सचेतनीकरण और मानवीकरण हो जाता है''।[28]

उक्त कथन के प्रतिपाद्य की तरह ही लोकगीतों में भी विरहिणी नायिकाओं के द्वारा संदेश भेजने की लोक–परम्परा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। 'हरिऔध' ने इसी तरह की कथा–व्यथा का सन्देश भेजा है। राधा पवन को प्रियतम के पास कुछ सन्देश देकर भेजती है–

''लाके फूले कमलदल को श्याम के सामने ही,
थोड़ा–थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो हो डुबाना।[29]

उक्त उद्धरण में लोकगीत की स्पष्ट झलक मिलती है।

सियारामशरण गुप्त बहुमुखी प्रतिभा के कवि हैं। वे जितने गहरे हैं उतने ही सरल। बरसाती हवा की भाँति ठण्डा, प्राणों को हरा और मन को चैतन्य कर देने वाला हल्का सा झोंका इनकी कविता से प्राप्त होता है। गाँव की वधू की भाँति प्रसाधनहीन इनकी कविता प्रकृति सौन्दर्य और परिपक्व रस से आतप्रोत है, जिसका सौन्दर्य मर्यादा और संयम के घूँघट से छनकर आने वाले प्रेम की एक मूक दीठ–सा दिखता है।[30]

ठाकुर गोपलशरण सिंह 'संचिता', 'माधवी', 'ज्योतिष्मती', 'कादम्बिनी', 'ग्रामिका', 'मानवी' और 'सुमना' आदि अनेक कृतियों के रचयिता और द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के सरस गीतकार कवि हैं। जीवन–रस से संपृक्त उनकी कविता प्रेम, करूणा और प्रकृति का सरल, सीधी–साधी शैली में चित्रित ग्रामीण चित्र है। दहेज जैसी कुरीतियों के प्रति तीव्र आक्रोश इनकी कविताओं में मुखर हुआ है। यथा–

भगवान हिन्दू जाति का उत्थान कैसे हो भला।
नित्य यह कुरीति दहेज वाली घोंटती उसका गला।
सुकुमारियाँ वे भोगती हैं यातना कितनी बड़ी।
जो पूर्ण यौवन काल में भी है बिना व्याही पड़ी।
अगणित कुटुम्ब का किया इस राक्षस ने नाश है।
तो भी बुझी न अभी अहो इसकी रूधिर की प्यास है।[31]

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' हिन्दी के बड़े भावुक और सरस हृदय कवि हैं। 'करूण–कादम्बिनी', 'गरपाष्टक', 'प्रेमपच्चीसी', 'कृषक–क्रन्दन', 'कुसुमाजंलि', 'संजीवनी', 'राष्ट्रीयमन्त्र', 'राष्ट्रीय वीणा' (भाग 2), त्रिशूल–तरंग' आदि इनके प्रमुख काव्य संकलन हैं। प्रगीत रूपों की दृष्टि से आपकी रचनाओं में मुख्यतः गीत, शोकगीत, चतुर्दशपदी, सम्बोध गीति और पत्रगीति आदि रूप मिलते है। इनके गीतों में लोकलयों के संस्पर्श विशेष द्रष्टव्य हैं।

उपसंहार

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इन कवियों ने यद्यपि, लोकगीतों पर आधारित गीतियों की रचना तो की है किन्तु अन्ततः सभी द्विवेदीयुगीन संस्कारों, आदर्शों से प्रभावित रहे हैं। साथ ही यह न कहना भी अनुचित होगा कि छायावाद की पृष्ठभूमि का निर्माण इन्हीं कवियों के अन्तस के तरल

सरस राग की भूमिका पर हुआ। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता की प्राचीरों के परे अपने हृदय और प्रकृति के संगीत की धड़कनों को स्वर देने की इनकी अस्पष्ट चेष्टा के फलस्वरूप ही छायावादी गीत–विहगों के कल–कूजन से, हिन्दी कविता की अमराई नन्दकानन के सदृश, समृद्ध, सुरम्य, मधुर एवं रससिक्त हो गुंजरित हो सकी।[32]

सन्दर्भ

1. डॉ० आशा किशोर : आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास (विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1971) पृ० सं०–22।
2. श्री प्रकाश शुक्ल : साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य (लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2001) पृ० सं०–104।
3. डॉ० आशा किशोर : आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1971) पृ० सं०–22–23।
4. हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास पृ० सं०–175–176।
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी, द्विवेदी काव्यमाला, पृ० सं०–423।
6. श्री कृष्ण लाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (कविता)।
7. शंकर पंच पुकार : सरस्वती, मई 1908, पृ० सं०–107।
8. श्री कृष्ण लाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (कविता) पृ० सं०–113।
9. श्रीधर पाठक, भारत गीत पृ० सं०–168।
10. गुरूभक्त सिंह कुसुम कुंज पृ० सं०–111।
11. वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी : आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व पृ० सं०–177।
12. गिरधर शर्मा : लोरी, सरस्वती, भाग–14 सं०–1 पृ० सं०–26।
13. रामचरित उपाध्याय, कन्हैया, सरस्वती भाग–18 सं०–1 पृ० सं०–16।
14. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध : प्रिय प्रवास, अष्टम सर्ग पृ० सं०–86।
15. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध : वैदेही वनवास, द्वादस सर्ग पृ० सं०–26।
16. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध : वैदेही वनवास, द्वादस सर्ग पृ० सं०–140।
17. डॉ० श्री कृष्ण लाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (कविता) पृ० सं०–73।
18. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–287।
19. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–292।
20. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–299।
21. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–309।
22. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–312।
23. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध : पधप्रसून पृ० सं०–191–195।
24. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–326।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i03.55

25. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–314।
26. मैथिली शरण गुप्त : साकेत नवम सर्ग पृ० सं०–323–324।
27. श्रीधर पाठक : काश्मीर सुषमा पृ० सं०–5।
28. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगात्तर पृ० सं०–300–301।
29. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध : प्रियप्रवास पृ० सर्ग पृ० सं०–72।
30. आचार्य चतुरसेन शाक्षी : हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास पृ० सं०–663।
31. सरस्वती खण्ड–8 सं०–1 सन् 1907
32. डॉ० मंजू गुप्ता : आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प विधान (मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1974) पृ० सं०–103।